बाउल परंपरा

- डॉ. अनिल कुमार

समय-समय पर संसार के कोने-कोने में ऐसे अनेक संत-महात्मा जन्म लेते रहें हैं जो शास्त्र यानी एक तरह की रूढ़िवादिता की प्रतिक्रिया में अपने लोकधर्म का निर्वाह करते हैं। बंगाल में भी बाउल परंपरा अपनी लोकधर्मिता के लिए जानी जाती है। बांगला भाषा एवं साहित्य की लोकधर्मिता का प्रस्थान बिंदु दसवीं-बारहवीं शताब्दी में भक्ति-परक रचनाओं-चर्यापदों के प्रणयन से माना जाता है। इन चर्यापदों के मूल में बौद्ध धम्म के सिद्धांतों के प्रचार-प्रसार का भाव था। इसके बाद मध्यकालीन बांगला साहित्य में मंगल काव्य- चंडी मंगल, धर्म मंगल, मनसा मंगल और शिवमंगल आदि उल्लेखनीय है।

परंतु बंगाल पर इस्लाम धर्मानुयायी मोहम्मद गौरी के सेनापति बख्तियार खिलजी के आकस्मिक आक्रमण ने बंगाल के सामाजिक- धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन को एक गहरा धक्का पहुँचाया। परिणामस्वरूप संस्कृत की चिंतन परंपरा और संस्कृति ने अपनी प्रचलित पुरानी गरिमा एवं प्रभाव को खो दिया। इसका मूल कारण यह था कि यहाँ के जन-मन पर बौद्ध-सिद्धों का प्रभाव अधिक था जो कि इस्लाम के सशस्त्र एवं क्रूर आक्रमण को नहीं झेल पाया। इसके बाद लगातार मुस्लिम शासक सत्ता हथियाते रहे। लेकिन फिर भी संत जयदेव (12तीं सदी), 'महाप्रभु चैतन्य (15वीं सदी) और बाउल संतों (16वीं सदी) ने भक्ति के द्वारा सामाजिक नवोत्थान की चेष्टा की जाती रही। बंगाल के चंडीदास ने भक्ति के द्वारा समझाया-

"सुनहु रे मानुष भाई। सबार उपरे मानुष शत्तो। तहार उपरे नाई।"

अर्थात् हे मनुष्य भाई सुनो! सबसे ऊपर मनुष्य सत्य है; उसके ऊपर कोई नहीं है। इस पृष्ठभूमि में यह स्वाभाविक था कि शास्त्र के विपरीत लोकाचार पर बल देने वाले एक पृथक सम्प्रदाय का उद्भव और विकास हुआ जिसने मुक्त कंठ से मानव की साधना पर बल दिया है। इनकी दृष्टि में मानव ही साक्षात् ईश्वर है। अतः मानव शरीर में ही ईश्वर को खोजने का प्रयत्न करना चाहिए। जैसे कि बाउल गीत में कह गया है-

'वेदे कि तार मर्म जाने/ये रूप साँइर लीला-खेला/आछे एइ देह भुवने ।।

पंचतत्व वेदेर विचार/पंडितेरा करने प्रचार/मानुष तत्व भजनेर सार/वेद छाड़ा वै रागेर मानै।।"

वस्तुतः बाउल हर तरह के सामाजिक बंधनों से मुक्त स्वच्छंद प्रकृति को स्वीकारते हैं। जब समाज में इन लोगों से सामाजिक मर्यादा का पालन करने के लिए लोग आग्रह करते हैं तो ये लोग अपने आपको बाउल बताते हैं। अर्थात् ये कहते हैं कि हम समाज-व्यवस्था की दृष्टि से मृत हैं और मृत

व्यक्ति पर समाज के रीति-नीति संबंधी नियम लागू नहीं होते। हम लोग तो 'ज्यंते मरा' अर्थात् जीवित ही मरे हुए हैं। इस संबंध में एक गीत उद्धरणीय है-

"जेंते मरा प्रेम साधन कि पारबि तोरा/ये प्रेमे किशोर-किशोरी हये छे हारा ।।

शोसाय शोषे ना छाड़े वाण, घोर तुफाने वाय तरी उजान,

ओ तार काम-नदीते चर पड़ेछे/प्रेम नदीते जल पोरा ।।

हाँटते माना, आछे चरण । / मुख आछे तार, खाइते वारण,

फकीर लालन कय ए ये कठिन मरण/त कि पारबि तोरा।"

इस प्रकार मोटे रूप में सामाजिक आचार-व्यवहार से बाह्य धर्म सम्प्रदाय बाउल है। बाउल सम्प्रदाय एक तरह से वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय के साथ सूफी (मुस्लिम) फकीरों के मेल-जोल से विकसित हुआ। ये सहजिया वैष्णव और साथ ही सूफी फकीर भी दोनों मंदिर- मस्जिद, व्रत-नमाज, साधना-भजन आदि रूढ़िगत धार्मिक आचार- व्यवहार का विरोध करते हुए गुरु द्वारा सुझाई गई आत्मसाधना पर बल देते हैं। इस सम्प्रदाय का कोई लिखित शास्त्र यानी धर्मग्रंथ नहीं है। अतः यह गुरुवादी धर्ममत है।

वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में भी बाउल मत के अनुसार साधन- संगिनी रखने का विधान है। परंतु यहाँ यह ध्यातव्य है कि यह साधन संगिनी गृही के समान यौन सुख के लिए न होकर मिथुनात्मक योग- साधना के अंग के रूप में पुरुष-प्रकृति अर्थात् पुरुष-स्त्री के संगम रूप में होती है। वैष्णव सहजिया सम्प्रदाय में पुरुष और स्त्री का यौन-मिलन धार्मिक दृष्टि से वैध है। बाउल सम्प्रदाय एक तरह से जनसामान्य / निरक्षर समुदाय की सृष्टि है, जो कि पूर्णतः लौकिक धर्म है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बाउल, धर्म की रुढ़िगत परम्पराओं के विरोधी होते हुए भी नास्तिक नहीं होते। ये गुरु को अत्यधिक महत्त्व देने के साथ- साथ दैहिक एवं आध्यात्मिक धर्म-साधना पर बल देते हैं। इसके साथ समाज के सामान्य वर्ग को गतिमान रखने के लिए प्रादेशिक संस्कृति एवं परंपरा नवीन विषयों एवं साहित्य के रूप में उभरकर आई। बंगाल की बाउल परंपरा, ऐसी ही परंपरा है।

बंगाल की बाउल परंपरा पर बात करने के क्रम में यहाँ पहले 'बाउल' शब्द गौर करने लायक है। बंगाल में बाउल एक सम्प्रदाय एवं जाति के रूप में देखा जाता है, जो कि सामान्यतः पीले रंग के वस्त्र धारण करते हैं, जिसे 'अलखल्ला' कहा जाता है। ये लोग साधू-संतों के समान लंबे-लंबे केश रखते हैं और गले में तुलसी व स्फटिक की माला पहनते हैं। इकतारा बजाते और गायन करते हुए घूमते रहते हैं। समाज के लोग इन्हें जो कुछ अन्न या धन देते है, उसी से ये अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। इनके घूम-घूम कर गाने और अन्न व धन संग्रह के कर्म को 'मधुकरी' कहा जाता है। जिससे अभिप्राय है-

हाथ से मधु अर्थात् अमृत संग्रह करना। क्षितिमोहन सेन की 'बंगाल के बाउल ' के अनुवादक रामचन्द्र राय 'बाउल' शब्द के विषय में उल्लेख करते हैं- "संस्कृत में एक शब्द बातुल है। बातुल शब्द से बाउल शब्द की उत्पत्ति मानी जाती है। बातुल का अर्थ बाउर, बौरा, वायु आदि दिया गया है, जिसका सामान्य अर्थ पागल, बन्धनहीन, मुक्त आदि होता है। इन सब कारणों से बाउल लोग अपने को पागल भी कहते हैं। आपसी बातचीत में पुरुष बाउल के लिए क्षेपा (पागल) एवं महिला बाउल के लिए क्षेपी (पगली) शब्दों का भी प्रचलन है। ये लोग मद्यपान, गाँजा-भंग सेवन आदि भी अत्यधिक मात्रा में करते हैं एवं साथ में महिला को भी रखते हैं, किन्तु बाउल शब्द पागल अर्थ का द्योतक होते हुए भी ये लोग सचमुच में पागल नहीं होते हैं। ये लोग वेद, पुराण, शास्त्रादि, सामाजिक रीति-रिवाज आदि का अनुकरण न कर, मुक्त कंठ से मानव-साधना पर बल देते हैं। इन लोगों की दृष्टि में मानव ही ईश्वर है। इन लोगों की अवधारणा है कि मानव शरीर के अन्दर ही ईश्वर का निवास है।"

वैष्णव सहजिया धर्म सम्प्रदाय में भी भक्त ईश्वर-प्रेम में मतवाला और बाह्य संसार के व्यापार में उदासीन व्यक्ति को भी बाउल कहा जाता था। स्वयं चैतन्यदेव ने भी स्वयं को बाउल कहा है। असित कुमार बन्द्योपाध्याय के अनुसार, "बातुल या व्याकुल से "बाउल" शब्द उत्पन्न हो सकता है अर्थात् ईश्वर-प्रेम में जो पागल है अथवा आउल (अरबी) (या बाउर) हिन्दी जिसका अर्थ वायुरोग ग्रस्त है से भी यह शब्द व्युत्पन्न हो सकता है। अरबी शब्द का अर्थ है ईश्वर-प्रेमी, स्वाधीन चित्त, जाति सम्प्रदाय चिह्न से रहित एक भक्त दल विशुद्ध ईश्वर प्रेम में विश्वासी होकर प्रायः चार सौ वर्ष पहले जाना जाता था। "बाउल" नाम से वह सोलहवीं-अठारहवीं शताब्दी में वैष्णव सहजिया समाज में विशेष प्रधान हो गया था। उसने सम्प्रदाय को तात्विक रूप में प्रभावित किया। इनमें से कुछ तो बाउल नाम से ही परिचित थे। मालूम होता है कि बाउल सम्प्रदाय इनके द्वारा ही परिपुष्टि लाभ कर सका, इनके बीच से ही उत्थित हुआ है। (बंगला साहित्येर सम्पूर्ण इतिवृत्तिः असित कुमार बन्द्योपाध्याय, द्वितीय संस्करण 1978, पृ. 262)

वस्तुतः ये बाउल अर्द्ध संन्यासी की भाँति जीवनयापन करते हैं। वर्तमान में 'बाउल' समाज के लोग बंगाल के साथ-साथ बिहार- झारखंड और बांग्लादेश के कुष्टिया व नारायणगंज के जिलों में निवास करते हैं। बाउल समाज में बाउलों की दो श्रेणियां देखी जाती हैं। प्रथम 'वैरागी' यानी वे बाउल जो अपने घर-परिवार का परित्याग कर देते हैं। द्वितीय गृहस्थ बाउल अर्थात् वे बाउल जो घर-परिवार में रहते हुए अपने धार्मिक संदेश का प्रचार-प्रसार करते हैं। वैरागी बाउलों का कोई निश्चित घर नहीं होता। ये घुमंतु होते हैं और बाउलों के एक अखाड़े से दूसरे अखाड़े में घुमते हुए गीत गाते रहते हैं। इन्हें जाति-भ्रष्ट के रूप में जाना जाता है। इन वैरागी या घुमंतु बाउलों के साथ जो महिलाएँ रहती हैं, वे सेवा दासी यानी ईश्वर को समर्पित दासी के रूप में जानी जाती हैं। ये इनके साथ ईश्वरीय प्रेम/साधना के कारण जुड़ी रहती हैं। एक बाउल (पुरुष) की एकाधिक सेवा दासियाँ हो सकती हैं। बाउल लोगों का यह व्यवहार लौकिक धर्म के पालन पर बल देता है। बाउलों ने जहाँ हिन्दू-मुस्लिम

की रुढ़िवादिता के स्थान पर लोकधर्मिता पर बल दिया वहीं, हिन्दू-मुस्लिम को एक साथ लाने का भी प्रयास किया है। बाउल धर्म साधना को 'राग' का आधारभूत कारण मानते हैं, क्योंकि यह राग ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धांत को साकार कर सकता है। प्रेम/ राग को समझे बिना कोई साधना नहीं कर सकता, राग की उपलब्धि से ही स्वरूप तत्त्व यानी कृष्ण तत्त्व की प्राप्ति होती है। यह गुरु की कृपा से ही प्राप्त होता है। पोथी-पुराण पढ़ने या कथा के पढ़ने-सुनने से यह संभव नहीं है। और हाँ, यह गुरु भी सूक्ष्म देहस्थित आत्मा या रस-बीज है। यह ईश्वर की भाँति ही सर्वशक्तिमान है। इस संबंध में आत्मलोचन का यह पद उद्धरणीय है-

"ना जाने से रागेर करण/शुधु कथाय कि हय प्रेमेर आचरण।

कथाय कथा सवाइ तो कय, वोवा नय तो जगत्-जन

छेड़ा च्याटाय, शुये थाके, देखे लाख टाकार स्वपन ।।

गाभीते हय गोरोचना, से जाने ना तार मरम।

देख, सापेर माथाय मानिक ज्वले/तवु करे भेक-भोजन।"

कहने का भाव यह है कि मानव और ईश्वर दोनों साथ-साथ ही है, लेकिन मानव ईश्वर से अनभिज्ञ होकर सांसारिक सुखों में या कुप्रवृत्तियों में संलिप्त रहता है। जैसे साँप के माथे पर मणि के होते हुए भी वह मेंढ़क खाता है। यही उसकी अज्ञानता या विवशता है। ऐसा ही मनुष्य सांसारिक यानी ऐंद्रिक सुखों में डूबा रहता है। इसके विपरीत बाउल मनुष्य में ही ईश्वर को खोजता है। वस्तुतः वह ईश्वर को खोजने पर अपनी सत्ता एवं महत्ता को प्राप्त करता है-

"ये खोजे मानुषे खोदा सेइ तो बाउल।

वस्तुते ईश्वर खुजे पाय तार उल।।"

यहाँ कहने का भाव यह है कि शास्त्र एवं कर्मकांड आदि से परे मानव में ही ईश्वर को खोजने वाला परंपरा का विरोधी होगा, लोक धार्मिता का पालन करने वाला होगा। संसार ऐसे व्यक्ति को बाउल यानी पागल ही तो कहेगा।

बाउल सदैव आनंद-निरानंद से परे नित्य प्रेमानंद में वास करता है। वह स्वयं में ही हँसता और रोता है। न वह धन चाहता है, न प्रसिद्धि। वह अपने-पराये में भेद नहीं करता। वह चैदह भुवन के दग्ध होने पर आसमान में अपना घर बनाता है। वह सदैव महाभाव में रहता है-

"महाभावेर मानुष होय ये जना/तारे देखले जाय रे चेना-/

(ओ) तार आँखि दुरि छल-छल/मृदुहासि वदन खाना।"

सभी प्रकार के नियमों व विधानों से पूर्णतः मुक्त होकर सभी से प्रेम करना, किसी से किसी प्रकार का भेदभाव न करना, सभी आसक्तियों से दूर रहना, आनंदमग्न हो गाना-नाचना और अपने पीछे कोई परंपरा न छोड़ना ही बाउल के जीवन का सार है। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है 'मनेर मानुष' की खोज। अब सवाल यह है कि आखिर यह 'मनेर मानुष है कहाँ? बाउलों की मान्यता है कि 'मनेर मानुष' या 'रस का मानुष' मानव देह में ही वास करता है, लेकिन ऐंद्रिक विकारों की विकृति से वह इस देह-गृह में वास नहीं करता। बल्कि वह ऐंद्रिक सुखों की लालसा में इधर-उधर भटकता रहता है। बाउलों ने दैनदिन जीवन के क्रिया-व्यापारों-खेत जोतना, खजूर का पेड़ काटना, मछली पकड़ना एवं गुड़ बनाना आदि के उदाहरणों से मानव को चेताया है। जैसे कि यादु बिंदु का यह गीत लिया जा सकता है-

"आमार एइ कादा-माथा सार होल।

धर्म माछ धरव वले नामलाम जले, / भक्ति-जाल छिंड़े गेल।

केवल हिन्से-निन्दे-गुग्लि-घोड़ा/पेयेछि कतक गुल ।।

एइ सत्य धर्म-विले, /सुरसिक वागदी दुले/ शुद्ध भावे जालटि फेल, आनन्दे, माछ धरछे भाल।

आमि पड़लाम फाँके, माया-पाँके, बल-बुद्धि चलोय गेल।।

कुसंगे विल गावालाम, कुक्षण जाल नावालाम, क्षमा-खालुइ हारालाम/उपाय कि करि वल।

आमि विल घुणे पाइ चाँदा, पैंटि, लोभ-चिले लुटे निल।।

पाँचरा भूत लागल पिछे, /माछ-धराय प्याँच पड़ेछे, /

भये प्राण शुकिये गेछे, /आर वादी जना सोल।

आमि माकाल-पूजार मंत्र भुले/हयेछि एलोमेलो।।"

बाउल निताइ क्षेपा ईश्वर की बहुमुखी लीला यानी इस सृष्टि में विद्यमान वैचित्र्य को देखकर विस्मित हुए थेः

"आछे मानुष मानुषेते/ये पावे मानुष देखिते चिनिते।

मान-हुँस होये मानुष लये। फिरछेन सदाइ तिनि हूँसेते ।।

मानुषेते मानुष आछे, /मानुष नाचाय, मानुषइ नाचे;

मानुष याय मानुषेर काछे/मानुष हइते ।।

नारायण मानुष-रूप धरे/नर-नारायण होन द्वापरे

युगे युगे अवतार तिनि/इए मानुष-रूपेते ।।

मानुष डोवे, मानुष भोसे, मानुष कादे, मानुष हासे

मानुष याय, मानुष आसे/केवल कर्म प्रकाशिते ।।"

मानव की सर्वव्यापकता एवं सर्व सन्निवेश यहाँ स्पष्टतः अभिव्यंजित हुआ है। इससे बड़ी संप्रभुता एक देही यानी मनुष्य की और क्या हो सकती है कि स्वयं नारायण को भी कुछ करने के लिए मानव देह धारण करनी पड़ती है। मानवीय क्रियाओं में सन्नद्ध होकर वह मानवीय चरित को ही पुष्ट करता है। चंडीदास की मान्यता 'सबसे ऊपर मानव जीवन और उसका सत्य है।' इसी आशय को स्पष्ट करते हुए लालन का मत है कि-

"देव-देवतागण/करे आराधन जन्म निते मानवे ।।

कतो भाग्येर फले ना जानि/मने पेयेछो एइ मानव-तरणी।

वेये जाओ त्वराय सुधाराय/येन भरा ना डोवे।।

एइ मानुषे हवे माधुर्य-भजन/ताइत मानुष रूप गठेले निरंजन।"

मानव जीवन बहुत ही सौभाग्यवान है। माधुर्य भजन या प्रेममूलक उपासना का आधार यह मानव शरीर ही है। बाउल सम्प्रदाय में भगवान ने मानव हृदय के बिहारी आत्मा अर्थात् कृष्ण रूप में मानव देह में रूप का आस्वादन नहीं होता। इसलिए ईश्वर ने स्वयं को नर-नारी रूप में या पुरुष-प्रकृति के रूप में विभक्त किया-

"परमात्मा पुरुष-प्रकृति रूपे जोड़ा।

दुई तनु एक आत्मा कभु नहे छोड़ा।"

बंगाल में बाउल परंपरा की शुरुआत को लेकर लोगों के अपने- अपने तर्क-वितर्क हैं। सामान्यतः विद्वानों की मान्यता है कि बाउल परंपरा की शुरुआत हमारे देश के पश्चिम बंगाल में वीरभूमि जिले के केंदुली नामक स्थान से हुई, जिसे अब 13वीं शताब्दी के गीत-गोविंद के रचयिता जयदेव के नाम पर 'जयदेव केंदुली' के नाम से जाना जाता है। आज भी यहाँ प्रति वर्ष पौष संक्रांति से 14 दिन के लिए मेला लगता है, जिसे केंदुली मेला कहते हैं। इस मेले में बाउल गान सुनने और महसूस करने का अद्भुत नजारा होता है। बड़ी संख्या में लोग इस मेले में आते हैं।

बाउलों के प्रारंभिक स्रोतों के विषय में बहुत अधिक जानकारी नहीं मिलती लेकिन बंगाल के 15वीं सदी के वैष्णव ग्रंथों में इनका उल्लेख मिलता है। जैसे कि वृंदावनदास ठाकुर के 'चैतन्य भागवत ग्रंथ' और कृष्णदास कविराज के 'चैतन्य चरितामृत ग्रंथ' में यह शब्द मिलता है। स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कब 'बाउल' शब्द एक धार्मिक वैशिष्ट्य के रूप में प्रयुक्त होने लगा और फिर कालांतर में धार्मिक उन्मादग्रस्त मनोवृत्ति के रूप में व्याख्यायित होने लगा। कुछ चिंतकों की मान्यता है कि बाउल आंदोलन का सूत्रपात 15वीं सदी में वीरभद्र (वैष्णव संत नित्यानंद के पुत्र) के समय से हुआ है। तो कुछ विद्वान आठवीं सदी के फारसी कवि बाल से भी इसका सूत्रपात मानते हैं। "न्याड़ा, सहजिया, कर्ताभजा आदि भी अपने को नित्यानंद बाउल कहते हैं। इन सभी सम्प्रदायों में भेदाभेद हैं। इन सभी के आदि वीरभद्र अथवा चैतन्य महाप्रभु नहीं कहे जा सकते हैं। महाप्रभु एवं उनके सहयोगीगणों ने बहुत स्थान पर अपने को बाउल कहकर अपना परिचय दिया है। फलस्वरूप समझ में आता है कि वे लोग भी बाउलों को जानते थे।

बाउल बंगाल की ग्रामीण संस्कृति के अभिन्न अंग लंबे समय से रहे हैं। 18वीं शताब्दी के मध्य तक आते-आते बंगाली संस्कृति में बाउल संगीत अपनी एक अलग एवं महत्त्वपूर्ण पहचान बना चुका था। विद्वान बाउल संगीत को पूर्णतः लोक परंपरा से समृद्ध मानते हैं। 19वीं शताब्दी के अंत तक यह श्रुति यानी वाचिक लोक परंपरा के द्वारा अपना विकास करता रहा। बाउल जगत् में सबसे ज्यादा गानें 'भबा पगला' के लिखे माने जाते हैं। ये मुस्लिम समुदाय से संबंधित थे और वर्तमान बांग्लादेश में अत्यंत लोकप्रिय थे। वे स्वयं गानों की रचना करते, गाते और बजाते थे। लेकिन बाउल जगत् में विशेष प्रसिद्धि लालन फकीर की है, जिनसे रविन्द्रनाथ टैगोर अत्यंत प्रभावित थे। लालन फकीर ने रूहानी गानों के अलावा अंग्रेजों एवं दुष्ट जमींदारों के विरुद्ध भी गाने रचे थे। लालन शाह फकीर ने लगभग ढाई हजार बाउल गीतों की रचना की है। निर्गुण संत कबीर की भाँति लालन के पूरी तरह से हिन्दू या मुस्लिम होने में मतभेद है। लालन कायस्थ हिन्दू परिवार में जन्में थे परंतु इनका पालन-पोषण मुस्लिम परिवेश में हुआ। अतः कबीर की भाँति लालन को भी जातिगत भेदभाव का कटु एवं यथार्थ अनुभव था। लालन जातीय विभेद के दुष्प्रभावों को भली भाँति जानते थे। अपने एक गीत में ये स्वयं कहते हैं-

"सब लोके काय लालन कि जात संसारे।

लालन कय, जेतेर कि रूप, देखलाम ना ए नजरे ।।

छुन्नत दिले हये मुसलमान, / नारी लोकेर कि हय विधान?"

वामन चिनि पैतार प्रमाण, वामनी चिनि कि धरे ।।

केउ माला, केउ तस्वि गलाय, ताइते कि जात भिन्न वलाय, याओया किंवा आसार वेलाय/जेतेर चिह्न रय कार के ।।

गर्ते गेले कूपजल कय, गंगाय गेले गंगा जल हय,/ मूले एक जल, से ये भिन्न नय, भिन्न जानाय पात्र अनुसारे ।।

जगत् वेड़े जेतेर कथा, / लोके गौरव करे यथा तथा, लालन से जेतेर फाता / विकियेछे सात वाज़ारे।।"

बाउल दुधु इसी राष्ट्रीय शक्ति के अभाव से चिन्तित हैं और इसके मूल में जातीय भावना मानते हैं। गुलामी तो राष्ट्रीय जीवन की सम्पूर्ण गतिहीनता का प्रमाण है-

"शुधु रे भाइ जाता जातिर दोषे । फिरिंगीरा राजा हलो एदेशे एसे ।।

हिन्दु बोद्ध जैन मुसलमान / परस्परे हिसांय दिल प्राण,

ताइते तो पाद्री सृष्टान, यीशुसृष्टेर दीन प्रकाशे ।।

कोटि कोटि भारतवासी/एक हये रइलो ना मिशि,

कयजन फिरिंगी आसि,/एदेशे जुड़े वसे ।।

हाय रे धर्म मानुष जाति/एइ कि रे तोर रीति-नीति; /

लालन साँई कय दुदुर प्रति/त्याज जात पात-नेशे।।"

यहाँ जाति अभिमान की निस्सारता को व्यक्त किया गया है। लालन फकीर अपने एक गीत में मानव को समझाते हैं कि ईश्वर के यहाँ जाति भेद नहीं है। ईश्वर को भक्ति द्वारा ही पाया जा सकता है- भगवान के पास जाति-भेद नहीं है। परमात्मा भक्ति द्वारा ही बँधा है। भक्ति के क्षेत्र में जाति-पाँति का कोई विचार नहीं होता है-

"भक्ति द्वारे वाँधा आछेन साँइ / हिन्दू कि यवन वले/ताँर काछे जातेर विचार नाई ।।

भक्त कबीर जेते जोला, प्रेम-भक्तिते मातोयाला,/

धरेछे सेइ व्रजेर काला/दिये सर्वस्धन ताय ।।

रायदास मुचि एइ भवेर परे/पेल रतन भक्तिर जोर; /

तार स्वर्गे सदाइ घण्टा पड़े, साधुर मुखे शुनते पाइ ।।

एक चाँदे हय जगत् आल, एक बीजे सब जन्म होल;

फकीर लालन कय, मिछे कल/केन करिस सदाइ।।"

ये लोग शास्त्राचार, लोकाचार को तिलांजलि देकर मानवीय आचार-विचार पर ही अधिक बल देते हैं। ये लोग काया (देह) की आध्यात्मिक साधना करते हैं। इसलिए मानव देह, मानव जीवन, मानव गुरु, मानव आत्मा, मानव धर्म, मानव बोध आदि के संबंध में कौतुहल उत्पन्न करते हैं एवं इन सबको अत्यंत महत्त्व भी देते है। इन लोगों की मान्यता है कि धर्मशास्त्र के कारण ही जाति-जाति में, वर्ण-वर्ण में विभेद है। जाति, वर्ण, वित्त भेद मुक्त मानव जीवन एवं मानव समाज की स्थापना ही बाउलों की कामना है। इसका उल्लेख इस गीत में है-

"एमन समाज कबे गो सृजन हबे। ये दिन हिंदु-मुसलमान बौद्ध- सृष्टान जाति-गोत्र नाहि रबे।

शोनाय लोभेर बुल/नेबे ना कओ काँधेर झुलि, इतर आतरफ बलि/दुरे ठेले ना देबे ।।"

यह पद राष्ट्रीय शक्ति के निर्माण का एक सचेतन प्रयास है। अध्यात्म के सुर में तान की गहराई में और मनेर मानुष की खोज में प्रतिबद्ध बाउल साधक राष्ट्रीयता की बात करता है। इस राष्ट्रीयता के भाव के चलते ही बाउल कबीर की भाँति जनभाषा के प्रयोग पर बल देते है- "महम्मदेर जन्म यदि हतो ए देशे। वेहश्तेर कोन भाषा हतो वलतो ऐसे ।।

मातृभाषा त्यजे सवाइ/अरवी भाषा शिखले रे भाइ,/

ताते भाई फयदा तो नाई/अवशेषे ।।

हिवुते इंजिल ताओरात, आवेत्ता भाषार "खोदार" मत, /

संस्कृत वेदान्तेर वयेत्/लेखा आछे सविशेषे ।।

केन कूप मण्डूक हओ रे भाइ, हिसेव करे बोझ सवाई,/

खोदार सत्वार कोथाओ खोज नाइ, / अधीन दुधु भावे रसे।।"

संत कबीर ने भी 'संस्कृत है कूप जल, भाखा बहता नीर' का सिद्धांत समाज के सामने रखा था। ये बाउल सभी रुढ़ियों को ढकोसला बताते हैं।

बाउल सदैव आनंद-निरानंद से परे नित्य प्रेमानंद में वास करता है। वह स्वयं में ही हँसता और रोता है। न वह धन चाहता है, न प्रसिद्धि । वह अपने-पराये में भेद नहीं करता। वह चैदह भुवन के दग्ध होने पर आसमान में अपना घर बनाता है। वह सदैव महाभाव में रहता है-

"महाभावेर मानुष होय ये जना/तरे देखल जाय रे चेना- (ओ) तार आँखि दुरि छल-छल/मुदुहासि वदन खाना।" वे तो मानव में ही ईश्वरत्व को खोजते फिरते हैं-

"ये खोजे मानुषे खोदा सेइ तो बाउल ।।

वस्तुते ईश्वरे खुजे पाय तार उल।।

पूर्व पुनर्जन्म ना माने, / चक्षु ना देय अनुमाने, हय रे कवुल ।।

वेद तुलसी माला टेपा, एसव तारा वेले धोका,/शयताने दिये धाप्पा, /स्व करे भुल ।।

मानुष सकल मेले, देखे शुने वाउल वले, / लालन साँइजीर कुल ।। बाउल संत न तो ब्राह्मण धर्मानुयायियों की भाँति कर्मकांडों में विश्वास करते हैं और न ही जाति-पाँति एवं हिन्दू-मुस्लिम के भेद को मानते हैं। ये समाज में जो व्यावहारिक है-लोकधर्मी है- उस पर बल देते हैं। समग्रतः बंगाल की बाउल परंपरा में हम देखते हैं कि यह धार्मिक रूप से समन्वयात्मक है। इसकी साधना-पद्धति में तांत्रिक बौद्ध धर्म के ऊपर विकसित हुई। इसके ऊपर शैव-शाक्त, राधा-कृष्ण, वैष्णव-सहजिया एवं सूफी तत्वों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इन लोगों की साधना का मुख्य ध्येय नफस अथवा अहं को विनष्ट करना है। आप्तनाश हुए बिना अटल अथवा ईश्वर के साथ संबंध स्थापित नहीं हो सकता। इस विषय में उनकी अपनी ध्यान-धारणा है। बाउलों का ईश्वर मनेर मानुष अथवा अचिन पाखि है। वे काल्पनिक स्वर्गलोक में निवास नहीं करते हैं। वे मानव के अंतः लोक में विराजमान हैं। प्रेम-भक्ति के पथ पर काया-साधना (दैहिक साधना) से ही उन्हें पाया जा सकता है। इन लोगों की मान्यता है जो शरीर में है वही बह्मांड में है। इसी धर्म-दर्शन को सामने रखकर दैहिक साधना करते हैं। बाउल को उसके साधु-गुरु का भी यही आदेश है कि वह आत्मगोपनशील रहे "आपन भजन-कथा/ ना कहिवे जथा-तथा/आपन ते आपनि होइबे सावधान।"

सन्दर्भ ग्रन्थः

1. बंगाल के बाउल, क्षितिमोहन सेन (अनुवाद-रामचंद्र राय), नयी किताब, दिल्ली, संस्करण 2010

2. बंगाल के बाउल और उनका काव्य (भाग-1), डॉ. हरिश्चन्द्र मिश्र, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा म.प्र., संस्करण 1997

3. बंगला साहित्येर सम्पूर्ण इतिवृत्तिः असित कुमार बन्द्योपाध्याय, द्वितीय संस्करण 1978

4. बंगाल साहित्य और संस्कृति, डॉ. अमर सिंह वधान-डॉ. कुमुद बाला मुखर्जी, अभिषेक प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2017

5. भाषा, जुलाई-अगस्त 2005

नोट: इस लेख में गीत संबंधी उद्धरण 'बंगाल के बाउल और उनका काव्य' (भाग-1) से उद्धृत हैं।

- डॉ. अनिल कुमार

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग,

स्वामी श्रद्धानंद कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय